# लौट आना ली

हिन्दी ADDA

कविता

# लौट आना ली

वह एक उदास सी शाम थी। धुआँई सी पीली। दूर क्षितिज में गुम होता एक नन्हा नारंगी शावक आसमान की गर्भ से सरक रहा था चुपचाप। आसमान की देह निचुड़

कर साँवली हो गई थी, उदास, कमजोर, और बेजार। मैं चीखने-चीखने को हो आई थी 'नहीं...' मैं पसीने से तरबतर थी...

यह वही शाम थी जब मैं लीजा के कमरे से उदास, खाली हाथ लौटी थी, दूसरे दिन भी। वह जब थी हमारे साथ मैंने हमेशा उसके होने से इनकार किया। उसे यूँ लेती रही जैसे कोई अवांछित मेहमान। जो आया है तो चला भी जाएगा। पर अब जबकि वह सचमुच चली गई है मैं उसकी उपस्थिति हर क्षण महसूसती हूँ अपने आसपास। शेल्फ पर रखी उसकी किताबों में, आल्मारी, हैंगर में टँगे उसके घरेलू सूट, किचेन में डब्बों पर चिपकाए गए लेबल्स, रैक पर रखे सजाए गए बर्तनों का अपना अलग तरतीब। हालाँकि उसके रहते हुए मुझे हमेशा यह बात परेशान किए रहती कि वो इस तरह क्यूँ है। पर अब जबकि वह चली गई है मैं उनके सलीके को नहीं छेड़ती। जैस वह यहीं है हमारे साथ और अभी-अभी उठ कर गई है मेरे कमरे से। शायद उदय के कमरे तक...। शायद बाथरूम तक...।

मुझे भी उसकी उपस्थिति की आदत हो चली थी। मुझे पता था उसे यूँ ही होना है मेरे आसपास। उसका होना मेरे लिए एक इत्मीनान था; एक तसल्ली। इससे भी ज्यादा कहीं एक आदत। आदतें ज्यादा परेशान करती है हमें। इनसानों से भी ज्यादा। स्मृतियों से भी ज्यादा। शायद नहीं...। आदतें और स्मृतियाँ दोनों ही तंग करती हैं हमें बेतरह। बराबर की मात्रा मे। न कोई कम, न कोई ज्यादा।

स्मृतियाँ उसके भी पास थीं, बेपनाह। जिन्हें उसने हमेशा मुझसे बाँटना चाहा था पर मैं ही... अबकि जब मिलने गई थी मैं उससे उसने पूछा था माँ चमेली के वे बेल सूखे तो नहीं, आप अब भी उसे पानी तो देती हैं न? ...मेरे कमरे की खिड़की में चिड़ियों ने जो घोंसला बना रखा था उसे उजाड़ा तो नही? माँ उसे बिल्कुल नहीं छेड़िएगा। वह घोसला चिड़ियों ने बड़े प्यार से सँजोया है... शायद कोई नया मेहमान आनेवाला है उनके घर। मैं एक ठंढी साँस ले कर रह जाती हूँ। लंबी चुप्पी पसरी है हमारे बीच... जिसे वही तोड़ती है। माँ देव के कुछ कपड़े थे लांड्री में। रसीद मेरे साथ चली आई थी। पर्स में होगी शायद, ढूँढ़ कर देती हूँ...

मैं उसका हाथ थाम लेती हूँ... बैठो कुछ देर... ढूँढ़ लेना फिर... बहुत थकी और कमजोर सी दिख रही हो। मेहनत ज्यादा करनी पड़ रही है? कहीं कोई बात... कोई सिलसिला जमा क्या? सोचती हूँ मैं यही सब  कहने तो नहीं आई थी उस तक। रास्ते भर जो वाक्य सँजोती रही थी वो ये तो नहीं थे। पर जो निकला है जुबान से वह मन की गहराइयों से निकला है। ...मैंने ईरादा बदल लिया क्या? नहीं...। इतना आसान नहीं होगा उससे यह सब कहना। शायद हिम्मत बटोर रही हूँ मैं उसके लिए।

कह रही है वह। हाँ, काम तो रहता ही है और आपका बनाया वह खाना जिसकी लत लग गई थी पिछले दो वर्षों में उसे भी बहुत मिस करती हूँ मैं। दुबली तो हो ही जाऊँगी न। खाना तो तुम भी अब कम अच्छा नहीं बनाती। बल्कि कभी-कभी ऐसा लगता है मुझसे अच्छा ही पका लेती हो तुम। मैंने पहली बार उसकी तारीफ की है। उसकी न सही उसके बनाए खाने की ही सही। खुद नहीं बनाती कुछ? मेरी निगाहें कमरे का सूक्ष्म निरीक्षण कर रही हैं। एक कॉफी मे कर, टोस्टर, हीटर। बर्तन के नाम पर कुछ कप तश्तरियाँ, गिलास। खाना तो यहाँ क्या ही बनता होगा। मेरी निगाहों का पीछा करके झेंप गई है वह थोड़ी। ये सब तो एलिस के हैं। मैंने नहीं लिया अभी कुछ। एक बार नौकरी मिल जाए फिर सामान भी ले लूँगी।

लीजा, बर्तन घर पर भी हैं बहुत सारे, अतिरिक्त भी। तुम कहो तो...? नहीं मम्मा। मैं आगे कुछ भी कहने की हिम्मत नहीं बटोर पाती। आगे बड़ी सी निषेध रेखा है। 'मम्मा'। एक ठंढी साँस किसी फाँस की तरह उतरती है मेरे भीतर। उसने परे धकेल दिया है मुझे। वह छिटक कर खड़ी हो गई है मुझसे, दूर... बहुत दूर। जब आई थी लीजा 'मैं' उसकी मम्मा ही थी। शायद मेरे चेहरे पर एक उल्लास है। मैं चाहूँ न चाहूँ जब चाहे मेरे पास आ खड़ी हो लो और जब दिल चाहे दूर चली जाओ। सारा हक तुम्हें क्यों है 'ली'।

'ली' उसे मैं प्यार से पुकारना चाहती हूँ पिछले कई दिनों-महीनों से। पर मेरे गले में ही कहीं अटका रह जाता है यह शब्द। मेरा संकोच, मेरा स्वभाव बाँध लेता है मुझे किसी अज्ञात डोर से। मैं उसके जितनी सहज नही रही कभी। पहली बार देखते ही 'मम्मा' और शादी होते ही 'माँ' पुकारते उसे कोई वक्त कहाँ लगा था। पर 'ली' मेरे छाती में ही कहीं घुमड़ता रहा था, गोल-गोल घूमता सा। ली... ली... ली... मेरी प्यारी ली, सुंदर

ली...। ली पर लिली नहीं। लिली मेरे पसंदीदा फूल का नाम, मेरी स्मृतियों में बसा मेरी बच्ची का नाम। जो कभी इस दुनिया में आई ही नहीं...

मैं रात-दिन उसके आने के उछाह में डूबी रहने लगी थी, उन दिनों। देव तब ढाई साल का रहा होगा। फूलों के बीच किसी हँसती हुई बच्ची का चेहरा। गेंद से खेलती कोई बच्ची। चश्मा लगा कर पढ़ती हुई एक गोल-गबरू बच्ची, बच्चियाँ हीं बच्चियाँ, मासूम सुंदर बच्चियाँ, उदय ने मेरे कमरे को बच्चियों की तस्वीरों से पाट रखा था। मलमल, साटिन, वेलवेट, कोमल-मुलायम से कपड़े मैं ढूँढ़-ढूँढ़ कर तलाशती। उन्हें बेल-बूटे, लेस और जरी-सितारों से सजाती। फिर बनता कोई नन्हा-मुन्ना टुइएँ जैसा फ्रॉक। उदय हँसते। आने तो दो उसे। तुम्हारे इन ऐरे-गैरे कपड़ों की मुहताज नहीं होगी वह, एक-से-एक कपड़े होंगे उसके पास। मेरी क्वीन एलिजाबेथ को आने तो दो...

पर वह नहीं आई थी। हमारा उछाह उसे कम लगा था शायद। हमारी खुशियाँ मामूली। रूठ कर-अकड़ कर बैठ गई थी वह। अपने सपनों से मिलते-जुलते किसी घर की तलाश में। ...डॉक्टर ने कहा था। 'ट्यूमर है, ऑपरेट करना होगा।' पर आपने ही तो कहा था 'एक्सपेक्टिंग है मीरा।' हाँ कहा तो था... लग भी ऐसा ही रहा था। दरअसल ट्यूमर और प्रिगनेंसी के लक्षण बहुत मिलते-जुलते होते हैं। बल्कि कहें तो 99% गर्भाशय के ट्यूमर, मतलब ऐसा गर्भ जो किसी कारणवश विकसित नहीं हो पाया और गाँठ में तब्दील हो कर रह गया...

वह गाँठ निकाल दी गई थी मेरे भीतर से... वह गाँठ कहीं बनी रह गई थी मेरे भीतर। बागवानी का शौक उन्हीं दिनों पाला था मैंने। मानो कोई-न-कोई शौक पाल लेना मेरी विवशता, मेरी जरूरत हो। उदय ज्यादा वक्त बिताने लगे थे बाहर। काम से या जान-बूझ कर, मुझे नहीं पता। उन्होंने दीवारों से सारी तस्वीरें उतार दी थी पर शायद मन में समा लिया था उन्हें। मैं खाली जगहों को घूरती रहती दीवारों पर मैंने कभी पेंट नहीं होने दिया। उदय खीजते। एक बच्चा तो है हमारा, देव इतना प्यारा है उस पर ध्यान दो। मीरा। उसमें मन लगाओ। मैं जानती थी वह खुद को ढाँढ़स दे रहे हैं। लिली... हाँ लिली के पौधे उन्हीं दिनों मिले थे मुझें। उजले-उजले फूलों में मैं हमेशा तलाशती रहती कोई गुमशुदा-गुमनाम चेहरा। अब मेरे बगीचे का एक बड़ा हिस्सा उन उजले-मुस्कराते फूलों के नाम था। तुमने भी 'ली' मेरे बगीचे के उस टुकड़े पर बहुत

श्रम लुटाया है। तुमने तलाश ली थी शायद मेरी दुखती रग, मेरी कमजोरी, टूटे रिश्ते का कोई अधबुना छोर। उसी के सहारे उतरी थी धीरे-धीरे तुम मेरे भीतर बहुत आहिस्ता-आहिस्ता। इतनी आहिस्ता कि न तुम जान सकी थी, न मैं कि हम कब समानांतर आ खड़े हुए थे।

तुमने शायद मेरे चेहरे पर छपे उलाहने को पढ़ लिया है। रूठे बच्चे को मनाने जैसी एक तरकीब निकाली है तुमने। "माँ लिली के पौधों की याद मुझे बहुत आती है। बहुत मिस करती हूँ उन्हें। एक छोटे से गमले में एक छोटा सा लिली का पौधा उपहार देंगी मुझे?" उसका पल में मुझे यूँ गैर बना देना अभी तक अखर रहा है मुझे। उसके हुशियार दानिशमंदी को खारिज करना चाहती हूँ मैं। "सौगात माँग कर नहीं लिए जाते। बहुत सारे लिली के पौधे मिल जाएँगे 'फ्लावर प्लानेट' में। ले लेना।"

"पर वो मेरी माँ के बाग के तो नहीं होंगे। मेरी माँ द्वारा पाले-पोसे, सँवारे हुए।" इस लड़की में जिद बहुत है। सहने की शक्ति भी बहुत। इसी से हार कर भी जीत जाती है वह। पर क्या सचमुच...।? वह तो चाहते, न चाहते हार चुकी है अपनी जिंदगी का सबसे बड़ा दाँव और उसकी हार मेरी भी हार है। मैं जा उसके समानांतर खड़ी थी, उससे एक हारी हुई लड़ाई लड़ती हुई, अपने पराजित दंभ के साथ। ...उसका टूटना-दरकना क्यों नहीं दिखा मुझे? कितनी अकेली होगी वह। और वह जब भी मेरे पास आना चाहती, मुझसे कुछ कहना चाहती मैं उसे परे धकेल देती। मुझे कुछ भी, कुछ भी क्यों नहीं महसूस हो सका कभी? मुझे हमेशा उनका रिश्ता सहज-सामान्य क्यों लगता रहा? मैं अपने ओढ़े हुए दुख अवसादों में इस तरह कैसे डूबी रही, आत्मलीन?

माँ एक बात कहनी थी मुझे आपसे। कहो। आप अपने सिर कोई बोझ नहीं लेंगी। आप इन बातों के लिए कहीं से भी जिम्मेदार नहीं... बोझ तो है मेरे सिर। और गलत भी नहीं। किस दुनिया में खोई हुई थी मैं, मैं कुछ क्यों नहीं... तुम चाहो तो मेरी इस पीड़ा को थोड़ा कम कर सकती हो। नहीं माँ आप कुछ नहीं कहेंगी इससे आगे। मैं मान नहीं सकूँगी आपकी बात। वह लेटे से उठ कर बैठ गई है। उसका चेहरा उत्तेजना से लाल हो रहा है... फिर 'माँ' क्यों कह रही हो मुझे...? वह घर सिर्फ आपका नहीं हैं, औरों का भी है माँ। वहाँ रह कर अब चैन से नहीं जी सकूँगी मैं... देव के होने-न-होने से कोई फर्क नहीं

पड़ता... 'स्मृतियाँ...' उनका क्या करूँगी मै? थोड़ा-सा चैन, थोड़ी-सी राहत नहीं देखना चाहेंगी आप मेरी जिंदगी में?

मैं अवाक हूँ, अब कौन सा तर्क? ...मुझे फिर पराजित होना होगा इसकी जिद से! लौटना होगा सिर्फ इसकी स्मृतियों के साथ। मैं हार गई हूँ लीजा से। अपनी ली से नहीं। ...मैं घर में लौटी हूँ अकेली, पर शायद अकेली नहीं। काले घुटनों तक लंबे, फ्रीलवाले फ्रॉक में वह भी घुसी है मेरे पीछे... पीछे...

मम्मा देव हैं क्या? मैं चौंकती हूँ इस तरह उसके घर में घुस आने पर। अनाधिकार 'मम्मा' पुकारे जाने पर। मैं देखती हूँ उसे गौर से, सुथरे रंग और बड़ी-बड़ी आँखोंवाली यह लड़की कौन हैं मेरी। मैं ऐनक के भीतर छिपे उसकी आँखों को पढ़ना चाहती हूँ। देव की यह किताब छूटी रह गई थी मेरे पास। उसे पढ़ना हो शायद। मैं किताब समेट लेती हूँ, अपने हाथों में। उससे कुछ भी नहीं कहती। देव बाजार गया है, बैठो... पानी पियोगी? कौन हो तुम, कहाँ रहती हो? कुछ भी नहीं...

मैं उसके यूँ आने और चले जाने से हतप्रभ हूँ। मम्मा नहीं मैं उसकी, मैं तो सिर्फ देव की मम्मा हूँ। उसने मुझे मम्मा क्यों कहा? मैं नाराज होना चाहती हूँ उस भूरी आँखोंवाली लड़की से। पर नाराज नहीं हो पाती। खीज कर मैं किताब पटकती हूँ। जैसे छुटकारा पाना चाहती हूँ उससे। उसके द्वारा पुकारे गए संबोधन से। देव तभी दाखिल हुआ है घर में। गिरे हुए किताब को उठाता हुआ हौले से मुस्कराता है। 'लीजा' आई थी क्या माँ? पगली है बिल्कुल...

मैं गुमसुम की गुमसुम खड़ी हूँ। दरवाजे को कस कर पकड़े हुए। जैसे हट गई दरवाजें से तो वह पुनः आ धमकेगी। पागल लड़की...

वह अक्सर आने लगी है मेरे घर। अधिकतर देव की बातों में, कभी-कभी उसके संग-संग। मैं देख रही थी, देव की रुचि वेस्टर्न क्लासिकल में बढ़ रही थी। वह कई बार 'कम सेप्टेंबर की धुन गुनगुनाता दिखता। अँग्रेजी के बेस्ट सेलर उसकी हाथों में जँचने लगे थे। केक का स्वाद उसकी जुबान पर मचलता रहता। उनकी खिड़कियों पर फबते हुए सफेद लेसवाले पर्दे, उनका अभिजात्य, उनकी आधुनिकता... देव की जुबाँ

पर जब भी उसका नाम आता। मैं अपने कानों पर ताले जड़ लेती। जुबाँ सिल लेती। हूँ-हाँ 'कुछ भी नहीं'।

मैं महसूस रही थी, कुछ तो खास है उस लड़की में कि मैं भी सोचती रहती हूँ अक्सर उसके बारे में। और इस सोचने के कारण झिड़कती भी रहती हूँ खुद को बार-बार। पर खुद को बरजने भर से कब थाम पाई मैं उस सिलसिले की डोर। देव की पहली-पहली नौकरी लगी थी, एक अलस सा दिन बीत जाने के बाद वह शाम आई थी बसंती-बसंती... मैं दिन भर उदय और देव के इंतजार में किवाड़ों-दरवाजों से बतियाती फिरी थी। कॉलबेल पर उमगी हुई आई। दरवाजा खोला तो धक्क... देव के बिल्कुल बगल खड़ी थी वह। लाल गंदुमी साड़ी में किसी तरह कसी-फँसी। आँखों में अकबकायापन। चेहरे को अस्त-व्यस्त बनाती पसीने की बूँदें। छोटे-छोटे घुंघराले बाल, उसका छोटे फ्रेम का चश्मा नाक से सरकता हुआ। मुझे गुस्सा नहीं आया, खीज आ रही थी। वह भी उन दोनों पर नहीं, केवल उस बेवकूफ लड़की पर। उसकी जिद पर। मैंने आरती की कोई थाल नही सजाई थी, न ही दरवाजें पर कोई चावल भरा कलश रखा। उसके पाँव भी आलता में नहीं डुबोए गए थे। बस दरवाजा खोल कर एक कोने में खड़ी हो गई थी मैं, 'न हाँ, न ना' की मुद्रा में...

देव मेरे गले आ लगा था। सॉरी मॉम, वेरी सॉरी... यह निर्णय बहुत जल्दी में लेना पड़ा। इसलिए तुम लोगों को बता-बुला भी नहीं सका कल ही लीजा के फादर उसे आस्ट्रेलिया ले कर चले जाते और मैं... माँ नाराजगी छोड़ दे, प्लीज... वह उठक-बैठक की मुद्रा में आने लगा था। मैंने रोक लिया उसे। नाराज नहीं हूँ मैं तुझसे। और यह झूठ भी नहीं था। मुझे चिढ़ सिर्फ लीजा से थी जो उदय के यह कहने से भी नहीं गई थी। एक ही तो बच्चा है, खुशी-खुशी सब रस्म करो वर्ना लोग क्या कहेंगे... 'लोग क्या कहेंगे' मुझे तो इस बात की भी परवाह नहीं थी। उदय ने फिर एक रात पूछा था मुझसे। लीजा से इतनी दिक्कत क्यों हैं तुम्हें? क्या उसका चेहरा तुम्हारी कल्पना की बहू से मेल नहीं खाता? ...ऐसी कोई बात नहीं...। क्या तुम यह चाहती हो, देव के जिंदगी में कोई और नहीं आए, देव केवल तुम्हारा बना रहे... तुम्हारा बेटा। नहीं... मैं चीखी थी जोर से... क्या तुम सोचती हो वह बीफ और पोर्क... नहीं ssss।

सच जितना बड़ा हो नकारना भी उसे उतनी ही शक्ति से पड़ता है... शायद सारी बातें सच थी... शायद सच इसमें से कुछ भी नहीं था... सच्चाई सिर्फ एक थी, वह थी। लीजा। मेरे चाहते, न चाहते वह थी तो थी। उसने अब फ्रॉक की तरह साड़ियाँ पहननी भी छोड़ दी थी; अब वो सूट पहनने लगी थी, मेरी तरह। उसकी विशिष्टता अब जाती रही थी। अपनी अनगढ़ता में और ज्यादा बेवकूफ और भद्दी लगती मुझे। वह लीजा का तीसरा दिन था हमारे घर। उदय के बुलाए मेहमानों से घर भर उठा था। मैं पूड़ियाँ तल रही थी। बेइजाजत उसने मेरी मदद के वास्ते बेली हुई पूड़ियों को कड़ाही में डाला था... 'छपाक'। छीटों से मेरी हथेली भर उठी थी। वह भी रो रही थी कोने में, पर खुल कर नहीं। उसने सामने रेडिमेड बहाना फैला लिया था, छोले के लिए काटे हुए प्याज...

पता नहीं कब कहाँ से छुप कर निरखती रहती वह हर पल मुझे। मैं सोई होती, वह किचेन सँभाल देती। मैं कपड़े सुखने को डालती, वह सूखे कपड़ों को तहा कर रख देती। मुझे लगता हर काम वह बिल्कुल मेरी तरह करने लगी है, यह मानते हुए मुझे परेशानी थी कि मुझसे भी ज्यादा सलीके से। उसकी अनभ्यस्तता मिटने लगी है कि मैं ही उसकी अभ्यस्त होने लगी हूँ। अकेलेपन में अक्सर मैं खुद से पूछने लगी थी यह सवाल। वह धीरे-धीरे मेरे लिए एक आश्वस्ति होने लगी थी हालाँकि मैंने मानना ऐसा कभी नहीं चाहा था, हर पहर उसके साथ-साथ होने पर भी... उस दिन तक... उस चिट्ठी को पाने और पढ़ लेने तक...

माँ, मैं जा रही हूँ। देव को अब मेरी जरूरत नहीं रही। उसकी अब एक अलग दुनिया है, जिसमें मेरी कमी उसे खलती नहीं। देव से मुझे कोई शिकायत नहीं है। उसने कभी भी मुझसे कोई शिकायत नहीं की, न ही कोई गलत व्यवहार। पर बर्ताव अच्छा हो कि बुरा उसे करने के लिए एक खास निकटता की जरूरत तो होती ही है। वह निकटता, वह घनिष्ठता ही खत्म हो चली थी हमारे बीच से। कब, कैसे यह मैं भी नहीं जान पाई। और अब जब कि वह लगाव ही नहीं रहा हमारे बीच महज एक खाना-पूरी की तरह आप सबके बीच बने रहने का मैं कोई मतलब नहीं समझती। देव और पापा को यह खबर आप ही दे देंगी।

उस शाम उदय को फोन करके मैं ढूँढ़ती रही थी हर तरफ। क्लब, दोस्तों के घर, बीयर बार, हर जगह। कहीं से घूमता-घामता मेरा संदेश मिल ही गया था उन्हें। नाराज से

घर में घुसे थे वो, ऐसी भी क्या जरूरत आन पड़ी थीं? मेरी आँखों में सूखे हुए आँसुओं की लकीर उन्हें नहीं दिखी थी। मैंने चुपचाप चिट्ठी उनकी तरफ सरका दी थी। वे पढ़ने के बाद बहुत देर तक चुप थे... देव को इन्फॉर्म किया...? नहीं मेरे पास उसका नया नंबर नहीं था। उन्होंने देव को फोन लगाया था, रिंग होने लगी थी, फोन मुझे थमा दिया। लीजा चली गई बेटा... कहाँ...? इस घर से... क्यों? यह तो तुम्हीं समझ सकोगे ठीक से दूसरी तरफ, एक लंबी चुप्पी है। ...वह रूठ कर गई है बेटा, उसे मना कर ले आओ। तुम गए तो वह नहीं रह पाएगी। ...अभी छुट्टी नहीं मिल पाएगी, मार्च का महीना है माँ... किसी भी तरह... संभव नहीं हैं माँ। ...वैसे भी वह जाएगी कहाँ, कोई रिश्तेदार भी यहाँ नहीं है... लौटेगी, जब मन होगा... नहीं बेटा, ऐसे नहीं लौटेगी वह, तुम फोन ही कर दो, नंबर मैं दे रही हूँ... नंबर लिखवाते वक्त मुझे यह अहसास बराबर है, वह नंबर लिख तो रहा है न?

मैं लीजा को फोन करती हूँ। माँ बताया देव को...? 'तो फोन अभी तक नहीं आया, इसके पास...'

उदय चुप हैं, बहुत चुप। हमेशा के विपरीत। खाना भी खाते हैं, तो बस एक-दो कौर... आज वे बहुत दिनों बाद मेरे बेडरूम में है। मुझ बुत बनी को कंधे से हिलाते हुए 'ऐसे हिम्मत नहीं हारते मीरा...।' तब भी जब हमारे हाथ में कुछ न हो...? 'हाँ तब भी, तब हौसले की जरूरत और ज्यादा होती है...' तुम देव से लीजा को वापस लाने के लिए क्यों नहीं कहते...? 'यह उनकी अपनी जिंदगी है। उन्हें अपने तरह से जीने दो... फैसले भी खुद ही लेने दो...। मैंने तो हमेशा उनके फैसलों की इज्जत की है...।' मैं नाराजगी में मुँह फेर लेती हूँ, दूसरी ओर। वे मेरा चेहरा घुमा ही लेते हैं जबरन अपनी तरफ। जानेवालों का पीछा नहीं करते। हम बरसों-बरस पीछे लौट रहे हैं। मेरी आँखें रुआँसी है, उनका कंधा नम...

पर गम शायद सब से ज्यादा उन्हें ही होता है। भटकते वे ही रहे थे दिन-रात। घर उन्हें रास नहीं आता था। अंतर था दोनों की भटकन में वे बाहर-बाहर भटकते रहे थे, मैं भीतर-भीतर। अपनी-अपनी तलाश लिए। तलाश सिर्फ तलाश... मैंने ढूँढ़ भी ली थी कोई क्षणिक शांति। लिली के पौधों में। पर उदय...? हम बरसों बाद हिलक रहे थे, पोंछ रहे थे एक-दूसरे के आँसू... आप से ही तो सबसे ज्यादा बातें करती थी वो... पर प्यार

सबसे ज्यादा तुमसे... हाँ इसी प्यार में उसने खो दिया अपना सारा सुख। इस अभागी ने मुझको जीतने या पा लेने की जिद में। अपनी विशिष्टता... अपनी पहचान। अपने लिए देव की ललक। मेरी परछाईं बनती गई वह, मेरी। जिसके आसपास सिर्फ और सिर्फ अकेलापन था। जिसकी किस्मत में सिर्फ खुद से बातें करना लिखा था। मैं कहना चाहती थी उससे पर कह नहीं पाई कभी। मत खोओ अपनी पहचान, कहीं की नहीं रह जाओगी। दोष सिर्फ मेरा है, सिर्फ मेरा। मैंने प्रत्यंचा ढीली की होती तो देव के बारे में सोच पाती वह, देव के लिए वक्त निकाल पाती। दोषी केवल मैं हूँ उदय, सिर्फ मैं...

अगर दोष का पता चल जाए तो उसे सँभाल लेते है, मीरा। तो मैं उसे वापस ले आने जाऊँ। मैंने ऐसा कब कहा? मैंने सिर्फ गलती सुधारने की बात कही है... मैं इन्हीं बातों के बहलावे में लीजा तक गई थी और लौटी हूँ खाली हाथ... लेकिन शायद मुहावरे में ही। मेरे हाथों में तो ड्राई-क्लीनर की रसीद है, देव के कपड़ों की... उदय बहुत दिनों बाद सरेशाम घर में है। पूछते हैं... चाय पीयोगी? मैं इशारे में कहती हूँ 'हाँ'। मैं लीजा के कमरे में हूँ। उसके कमरे को ठीक उसके ढंग से सहेजती। उसके कुछ अच्छे सूट निकाल कर रख लिए है मैंने, अबकी जब लिली का पौधा, देने जाऊँगी...

मैं और उदय संग-संग बैठे चाय पी रहे हैं कि फोन की घंटी बजती है, मुझे लगता है देव होगा या कि ली? हलो लीजा, मैं स्त्री स्वर को भाँप कर कहती हूँ। मैं डा. सुनीता अग्रवाल बोल रही हूँ। गाइनोकॉलोजिस्ट, आपकी फेमली डॉक्टर... कहिए कैसे याद आई हमारी... लिजा ने कहा नहीं कुछ आपसे...? नहीं तो...। वह शायद मानसिक रूप से तैयार नहीं है इस स्थिति के लिए। यहाँ भी सुन कर घबड़ा उठी थी... मैं देव से बात कर सकती हूँ...? वह नहीं है। लीजा? आप मुझे बताइए बात क्या है? लीजा का फीका कुम्हलाया चेहरा, मेरी आँखों के आगे तैर जाता है। प्रेगनेंट है वह? ढाई महीने के लगभग। वह एबार्शन चाह रही है, जबकि उसके रिपोर्ट...। उसकी जान को भी खतरा हो सकता है। बहुत ज्यादा एनीमिक और कमजोर है वह। रिपोर्ट अभी-अभी मेरे पास आई हैं... मेरे हाथों से फोन का चोगा छूट गया है।

किसका फोन था...? लीजा प्रेगनेंट है, एबार्शन करवाना चाह रही है वह... उदय का मुँह खुला का खुला रह जाता है। आप समझाएँगे उसे।? नहीं... उनकी आवाज कमजोर है

पर धीमी नहीं। मैं जाऊँ...? तुम्हारी मर्जी... मैं कशमकश में हूँ। मेरी आँखों के आगे देव का बचपन है, उसके खेल... किलकारियाँ। कोई औरत ऐसे-कैसे... मैं बहुत दिनों से बंद अलमारी का एक खाना खोलती हूँ। मेरे हाथों में छोटे-छोटे फ्रॉक हैं, सुंदर-सलोने फ्रॉक। मेरी उँगलियाँ जिन्हें सहला रही हैं, खेल रही है जिनसे। मैं निर्णय ले लेती हूँ...

मैं लीजा से बेहिचक कह देती हूँ मन की बात। लेकिन माँ, मेरी नौकरी... नौकरी जरूरी है? ...यह आप कह रही है माँ...? मैं इस बच्चे को ले कर... वैसे भी मार्केटिंग का जॉब होगा मेरा... इतनी औरतें पेट में बच्चों को ले कर नौकरी करती हैं, बाद में भी... आप भी मुझे समझ नहीं पा रही मम्मा... वे अकेली नहीं होतीं... मैं एक बार फिर आहत हुई हूँ। उसने एक बार फिर मुझे परे धकेल दिया है। मैं किस की खातिर कर रही हूँ यह भागदौड़...? मैं उससे उलझना नहीं चाहती। किसी तरह तू पैदा भर कर दे इसे, फिर तू मुक्त... यह संभव नहीं हैं, माँ। तू कुछ भी संभव करना चाहती ही नहीं? ...मेरा बच्चा देव के घर नहीं पलेगा माँ, और वह भी तब जबकि पलट कर उसने एक बार भी मेरा हाल नहीं जानना चाहा...

उसने पीछे से आ कर मेरे कंधे पर अपना सिर डाल दिया है, माँ मजबूर हूँ मैं, बहुत मजबूर। ...माँ मुझे एक बेटी की नजर से देखिए फिर समझ पाएँगी मेरी बात। वह हमेशा की तरह झटके से कह गई है अपने मन की बात। वह बात जो उसे बहुत पहले कह देना था और मुझे बहुत पहले समझ लेना... एक लंबी उदास चुप्पी पसरी है हमारे बीच... डेट कब का लिया है... परसों का। पाँच दिनों बाद फाइनल इंटरव्यू है मेरा। मेरी कोई जरूरत...? बल्कि कल शाम ही मैं आ जाऊँगी। तुम्हारे पास... माँ इसकी जरूरत नहीं है... एलिस के कॉल सेंटर का ऑफ उसी दिन होता है। ...मैंने कह दिया न, कल आ जाऊँगी मैं। मैं निकल पड़ी हूँ चुपचाप...

उदय मुझसे कुछ पूछते नहीं, मैं कहती नहीं। रात-भर उनके और मेरे बीच छोटे-छोटे फ्रॉक पसरे हुए हैं, हम दोनों सहला लेते हैं उन्हें रुक-रुक कर, दुलारा भी... जैसे कोई नन्हा, बच्चा सोया हो हमारे बीच। हम फूट-फूट कर रो लेते हैं एक साथ... रात बहुत लंबी है... बहुत बहुत लंबी... मैं उन नन्हें कपड़ों को समेट कर उनकी पुरानी जगह पर रख आती हूँ। किस आशा में? अब कौन सा इंतजार... मैं देव को फोन कर रही हूँ, एक बार... दो बार... न जाने कितनी बार। कहाँ है वह, वह मेरा फोन भी क्यों नहीं उठा रहा?

रात एक खोह है अँधेरे की, हम दोनों जिसमें दौड़ लगा रहे हैं। कोई भी सिरा रोशनी का हमें दिखता ही नहीं। लीजा की सहेली एलिस नहीं आई 'कॉलसेंटर' से। मैं उसकी फोल्डिंग पर उठंग हूँ। माँ वहाँ नहीं यहाँ, ली कह रही है। मैं चुपचाप उसके बिछावन पर आ बैठती हूँ। उसने चुपके से मेरे गोद में अपना सिर रख दिया है। माँ मैं भी नहीं चाहती ऐसा, पर कोई दूसरी उपाय भी नहीं मेरे पास। एक बार देव से बात करके देख... नहीं माँ... जब उसने एक बार भी हाल तक नहीं पूछा मेरा। मैं फोन करूँ...? नहीं माँ... आप तो मेरी माँ है न...

माँ मुझे आपसे कभी कोई शिकायत नहीं रही...। मेरी ज्यादतियों और नाराजगी के बावजूद? हाँ माँ, मुझे आप में हमेशा अपनी माँ दिखी। अपनी लाचार बेबस माँ। प्रेम के चुक जाने के बाद प्रेम का अभिशाप ढोती माँ। ...प्रेम का जीवन से चुक जाना बड़ा दुखद होता है न माँ...? मैं वैसी जिंदगी नहीं जीना चाहती थी। माँ को और आपको भी घुट-घुट कर जीते देखा है मैंने... और वहीं से ले पाई यह निर्णय... उदय वैसे नहीं है, जैसा तुम उन्हें समझती रही हो। तुम तक आ पाई तो उन्हीं के संबल से। वे अब शाम को जल्दी लौट आते हैं घर। आज चाय भी उन्होंने ही मुझे बना कर पिलाई... यह तो अच्छा हुआ। मेरे चले आने से कुछ तो सुधरा। मुझे एक तसल्ली तो होगी। अपने और देव के रिश्ते को नहीं बचा सकी। पर मेरी अनुपस्थिति ने आप दोनों को पास ला खड़ा किया। ...नहीं तो हमेशा मुझे यह दुख सालता...। मैं आपको अकेली छोड़ कर चली आई... स्वार्थी हो गई मैं...

चलो तुमने यह तो माना कि बदलने की गुंजाईश हर जगह बनी होती है, देव भी...। मैं किसी चमत्कार की प्रतीक्षा में अपनी जिंदगी नहीं गुजारना चाहती। कल की कल देख लेंगे... अभी तो अकेलेपन के साए इतने बड़े हो उठे थे कि भाग जाना ही उचित समझा मैंने। मैं माँ नहीं होना चाहती थी माँ, न ही आपकी जगह लेना। और ज्यादा असुरक्षाबोध मैं झेल नहीं पाती। जिंदगी भर तो उसी के साए पली हूँ मैं। देव को पाकर लगा था अब सुरक्षित हूँ मैं। जिंदगी एक सरल सीधी रेखा की तरह गुजार सकती हूँ। माइनॉरटी का वह लेबल। बाहर के होने का वह ठप्पा अब मेरे सिर से उतर जाएगा। अब एक सहज-सुरक्षित जिंदगी जी सकूँगी मैं। ...मैं अपना देश नहीं छोड़ना चाहती थी, अपनी माटी, जहाँ पली बढ़ी हूँ मैं, जहाँ का संगीत मेरे दिलो-दिमाग को उद्वेलित

करता है, जहाँ की हवा की खुशबू मुझमें खुशी का अहसास जगा जाती है। जहाँ के जीवन को एक अटूट हिस्सा मानती हूँ मैं खुद को।

पिता मुझसे ठीक विपरीत सोचते थे। असभ्य, जंगली लोगों पे भरोसा नहीं किया जा सकता। सभ्य तो हमी ने इन्हें बनाया। शिक्षा, सभ्यता, आधुनिकता सब तो इन्होंने हमसे ही लिया और हमारे साथ ही ऐसा बुरा व्यवहार... कभी किसी पादरी की हत्या... कभी किसी नन को नंगा घुमाया जाना। कीड़ों जितनी औकात भी नहीं थी इनकी... और अब... हमें यह देश छोड़ देना चाहिए। जितनी जल्दी हो सके...

पिता ने लाख चाहा हो मैं उनकी तरह होऊँ। मुझमें माँ ज्यादा थी। इस मिट्टी से बनी, इसी धरती की तरह सहनशील, भोली।भाली अनगढ़ सी मेरी माँ। पिता के दिए सारे हिदायतों और ट्रेनिंग के बावजूद मैं उतनी ज्यादा सिविलाइज्ड नहीं बन सकी। माँ वाली अनगढ़ता, कोरा-कच्चापन मेरे वजूद में था। था तो था... वही कोरा जो मेरे पिता को कभी बुरी तरह से प्रेम को विवश कर गई थी। ...और बाद में देव को मेरी तरफ...

...मेरे पिता केरल के क्रिश्चियन थे 'डिक्रूज'। माँ रेमीडियस (एंग्लो-इंडियन)। बावन ईष्वी में क्रिश्चियन के धर्मगुरू सेंट थॉमस सीरिया से पहली बार अरबों के साथ भारत आए थे। कालीकट के राजा ने तब उन्हें ईसाई धर्म के प्रचार।प्रसार की अनुमति दी थी। सेंट थॉमस की देख-रेख में ही पहली बार छोट-छोटे चर्चों का निर्माण हुआ। पिता उन्हीं सेंट थॉमस की संततियों में से थे। रक्त की शुद्धता उनका अभिमान थी अच्छा खाना, पहनना, पीना, शिकार सबके लिए उनका गहरा लगाव, उनके संस्कार। पर माँ के पास अपना कहने के लिए कुछ कहाँ था; न कोई देश, न विरासत, न संस्कृति... रक्त की वह शुद्धता भी नहीं थी माँ के पास। माँ की माँ बंगाली थी।

बाहरी समाज में अपने परिवार के लिए उपेक्षा। माँ के लिए पिता की रुक्षता। मैं आनेवाली दुनिया को ले कर चिंतित हो उठती। पिता किसी दूसरे देश में जा बसना चाहते थे, मेरा ब्याह भी वहीं करना। कि तभी देव मिले थे मुझे और मुझे मेरे सपनों की दुनिया मिल गई थी। माँ तक को न पचा पानेवाले पिता की उच्चता ग्रंथि देव और मेरे रिश्ते को क्या पचा पाती? वे स्वीकार नहीं सके थे इसे और आस्ट्रेलिया चले गए थे। शादी के बाद मैंने उनसे कोई संबंध नहीं रखा; मैं आप लोगों के बीच ही खुश थी...

मैंने माँ का इतना अपमान देखा था अपने घर में कि अपनी रुक्षता मुझे कुछ लगी ही नहीं... मैं माँ के चले जाने के बाद उनके जिस साए को तलाशती फिर रही थी, आपको देखते ही मेरी वह खोज पूरी हो गई लगी थी। और झटके में ही सही मैंने आपको पुकारा था - मम्मा... तो मैं इसीलिए आपके साथ साए की तरह लगी रही। आप कभी अकेली न हों। अकेलेपन का घुन आपको न लगे। मैं माँ की परिणति से डरी हुई थी। इसलिए भी अपने टूटते रिश्ते के साबुत होने का भ्रम पाले हुए जीती रही कितने दिन... पर अब जबकि अपना अकेलापन आपके अकेलेपन से बड़ा होता लगा, झेलने की हिम्मत जाती रही मेरी...

वह लगातार बोल रही थी, पर जैसे किसी दूसरे जहान से... जैसे पिछला सारा संचित बहा देना है उसे, कुछ भी नहीं रखना भीतर सहेज कर। वह जल मुझे बहाए ले जा रहा था, कूल-किनारा तोड़ कर। पर मैं उसे बहने से बचा लेना चाहती हूँ... मैंने उसे अपनी बाँहों में ले लिया है, जैसे अभी-अभी जन्मा कोई छोटा-सा बच्चा। बहुत दुख दिया न मैंने तुझे? काम की बातों के अलावे कभी भर मुँह बोला भी नहीं... मैं नहीं समझ पाई तुझे... बिल्कुल भी नहीं...। मुझे इससे कोई फर्क नहीं पड़ता माँ... बिल्कुल भी नहीं... आपकी उपस्थिति मेरे लिए... हमारी बातों में संवाद कम है, हिचकियाँ ज्यादा... माँ तीन माह से पहले गर्भ में कोई जीवन नहीं होता न? वह माँस और खून का लोथड़ा भर होता है, है न माँ...? हिचकियाँ टूट रही है उसकी। वह आश्वस्ति चाहती है मुझसे। हिम्मत भी। ...आश्वस्ति देना मेरे बूते का नहीं... हिम्मत दे सकती हूँ... मैंने अपनी उँगलियाँ उसके होठों पर रख दी है। आराम करो, वैसे भी कल... डॉक्टर कह रही थी बहुत कमजोर हो तुम... उसे डर है... जानती हूँ... अगर जिंदगी बची रही तो फिर से कमर कस कर उतरूँगी इस जीवन सफर में। मैंने उसकी पलकें बंद कर दी है, हौले से। बालों में उँगलियाँ फिरा रही हूँ, शायद थोड़ा चैन मिल जाए इससे।

माँ, मैंने गलत निर्णय तो नहीं लिया न...? मैं अपने आप से लड़ती हुई कहती हूँ 'नहीं'। उसे इस वक्त भीतर से कमजोर नहीं होना चाहिए... मैं कहती हूँ। सो जाओ ली, सुबह होनेवाली है... मैं अपने कहे पर विश्वास रखना चाहती हूँ... सुबह होने ही वाली है। मुझे हैरत नहीं होती, लीजा अपने नए संबोधन से बिल्कुल नहीं चौंकी... मुझे लीजा ने कुछ

नया कर दिया है इस सुबह में। मैं कुछ फैल गई हूँ, कुछ विस्तार पाया है मैंने। कोई पीड़ा जो अब तक साँस की तरह साँसें ले रही थी मेरे भीतर, अब नहीं...

मैं ओटी के बाहर खड़ी हूँ, उसे स्ट्रेचर पर ला रहे हैं। स्ट्रेचर ठीक मेरे आगे से गुजरी है। आँखें बंद है ली की, किसी नवजात शिशु-सी, चेहरा पीड़ा और भय से निचुड़ा हुआ। सफेद। हल्का नीला फ्रॉकनुमा गाऊन। उसका चेहरा लिली के फूलों की स्मृति दिला रहा है। मैं स्तब्ध हूँ। वह फिर से पुरानी लीजा में परिवर्तित हो ली है। वैसी ही जैसी वह पहले पहल मेरे घर आई थी। जिसने मुझे पुकारा था मम्मा। 'लिली' ...तो क्या मैंने उसे उसी दिन पहचान लिया था? रूठी थी तो बस इस कारण कि इतना देर क्यों किया आने में? ...मैंने उसकी हथेलियाँ कस कर थामी है, मेरा भरोसा, मेरा विश्वास प्रवाहित हो उसकी शिराओं में... मैंने हौले से कहा है। लौट आना ली। लौटना जरूर।